'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

# विनोबा-प्रवचन

( सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित )

वर्ष ३, अंक ५३ | वाराणसी, मंगलवार, ५ मई, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

जसाणा १७-११-'५८

## शिक्षा का दोष छात्रों पर मढ़ना ठीक नहीं

आज सुबह कई छात्र आये हुए थे। उन्होंने मुझसे बहुत अच्छे प्रश्न पूछे। उन प्रश्नों पर मैंने उनके साथ चर्चा भी की। उनमें एक प्रश्न यह भी था कि 'पूरे भारत में छात्रों की स्थिति का परिचय आपको भलीभाँति हो गया है। अतः उनके बारे में आपका क्या मत है ?' प्रश्न बहुत ही अच्छा रहा। मैंने उनसे इस विषय पर चर्चा की और अपना मन्तव्य भी प्रस्तुत कर दिया, जिसे मैं कई बार व्यक्त कर चुका हूँ।

### मुझे तो छात्र बड़े ही शान्त दीखे

बारीकी से देखने पर पता चलता है कि भारत का छात्र-वर्ग विनीत और समझदार है। आजकल छात्रों के बारे में सर्वत्र ये ही शिकायतें की जाती हैं कि 'वे अनुशासनहीन होते हैं, अविनीत होते हैं, पढ़ने-लिखने में ध्यान नहीं देते', आदि-आदि। लेकिन मुझे यह अनुभव हुआ कि ये आक्षेप उचित नहीं हैं। खासकर जिन शहरों के छात्रों के बारे में शिकायतें थीं ( जैसे—लखनऊ, कानपुर, पटना, काशी, त्रिची आदि )-जहाँ के लड़के उद्धत, उच्छृंखल माने जाते हैं, वहाँ-वहाँ मेरी सभा अत्यन्त शान्ति के साथ हुई। अन्य स्थानों में मेरी सभा में जितनी शान्ति रहती है, उससे कहीं अधिक शान्ति मैंने वहाँ देखी। मेरी इन सभाओं में सर्वत्र कॉलेज और हाईस्कूल के छात्र बहुत अधिक पैमाने पर जुटते थे। इन सभाओं में किसी भी तरह की उच्छृंखलता मुझे देखने को नहीं मिली। इसके विपरीत कई बार मैंने यह देखा कि मेरी बातें सुनने के लिए सारा विद्यार्थि-समाज अत्यन्त उत्सुक है। मुझे ऐसा ही अनुभव आता है, जब कि दूसरों को इसके विपरीत अनुभव आता है।

### दोष शिक्षा का ही

आखिर इसका कारण क्या है ? इस पर सोचता हूँ, तो यही समझ में आता है कि यह दोष शिक्षा का ही है। आज की शिक्षा में कुछ भी अर्थ नहीं। बहुतों ने यही बात कही है। आश्चर्य है कि ऐसा ही शिक्षण आज भी छात्रों को दिया जा रहा है। विद्यार्थी भी समझता है कि यह शिक्षा निरर्थक है। ऐसी स्थिति में मुझे आश्चर्य होता है कि आज विद्यार्थियों में इतना कम अनुशासन भी क्यों दीखता है ? वह तो इससे भी कम दिखाई पड़ना चाहिए था।

### इतना अनुशासन भी आश्चर्य की बात

हमें अपनी विद्यार्थि-दशा की बात याद आ रही है। जब हम स्कूल-कॉलेज जाते थे, तो वहाँ शिक्षक कुछ बका करते, तो हम उसे सुनते ही न थे। हम लोगों को जो कुछ करना होता, किया करते। जो पढ़ना हो, पढ़ते थे। कई बार शिक्षक हमसे पूछते कि 'आपका ध्यान कहाँ है ?' हम लोग जवाब देते कि 'अपने काम पर।' 'मैं जो व्याख्यान देता हूँ, उस पर आपका ध्यान है या नहीं ?' 'नहीं।' 'तो फिर गेट आउट' ( निकल जाओ ! ) शिक्षक बाहर जाने को कह दें, तो बस, हमें 'मेगनाचार्टा' ही मिल जाता और हम लोग ३-४ घंटे घूम-फिर-कर ठीक अन्तिम 'पीरियड' में उपस्थित हो जाते। जब यह याद आता है, तो आश्चर्य होता है कि ये लड़के इतने नम्र क्यों दिखाई पड़ते हैं ? अनुशासन का इतना भी पालन कैसे करते होंगे ? यह सब ये किस तरह सहन करते होंगे ? पाँच-पाँच, छह-छह घंटे व्यर्थ की तालीम किस तरह सहन कर लेते होंगे ?

### नयी तालीम की योजना का आरम्भ

जिस दिन हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिला, उसी दिन मेरा एक व्याख्यान रखा गया था। उक्त व्याख्यान में मैंने कहा था कि जिस तरह नये राज्य में पुराना झंडा चल नहीं सकता, उसी तरह नये राज्य में पुरानी तालीम भी नहीं चल सकती। अगर नया शिक्षण नहीं आता, तो यही समझा जायगा कि अभी पुराना ही राज्य चल रहा है। गांधीजी तो अनागत विधाता थे। याने जो बात अभी आयी नहीं और आगे आने-वाली है, उसका भी वे पहले से विधान कर देते थे। यही कारण है कि भारत को स्वतन्त्रता तो सन् १९४७ में मिली, पर उन्होंने नयी तालीम की योजना इससे दस वर्ष पहले ही बना डाली थी। उन्होंने अपनी यह योजना तत्कालीन कांग्रेस को समझायी और उसने भी इसे स्वीकार कर लिया था। 'तालीमी संघ' तत्कालीन कांग्रेस का एक अंग बन गया। इस तरह इसका आरम्भ स्वराज्य के पहले से हो चुका है।

### नये राज्य के साथ नयी तालीम क्यों नहीं ?

किंतु मान लीजिये कि स्वराज्य के बाद नया शिक्षण सभी

शिक्षाशास्त्रियों को भलीभाँति मान्य होता, तो जिस दिन स्वराज्य मिला, उस दिन से छह महीने तक स्वराज्य का आनन्द मनाने के लिए सभी स्कूलों को छुट्टी दे देते। इस बीच बच्चे छह महीने तक खूब खेलते-कूदते, अपनी शरीर-शक्ति बढ़ाते और हो सके, तो खेत में जाकर काम करते। इधर ये लोग शिक्षा-विशेषज्ञों को बैठाकर नयी शिक्षा-पद्धति बनाते। उसके बाद शिक्षा शुरू होती। किंतु हम लोगों की मनःस्थिति ऐसी थी ही नहीं कि हम कोई क्रान्तिकारी कदम उठा सकते।

## खादी की भी यह दशा

बापू की मृत्यु के बाद मुझे दिल्ली जाना पड़ा, तो वहाँ का वातावरण मुझे देखने को मिला। उस समय सरकार के सभी नौकरों की यही मनःस्थिति देखी गयी कि बड़े भाग्य से कांग्रेस के हाथ में राज्य आयेगा, इसलिए सभी नौकरों को खादी पहननी चाहिए, यह नियम बनेगा। इस तरह सभी नौकरों की खादी पहनने की मानसिक तैयारी थी, यह मैंने देखा, लेकिन हम लोगों को स्वतन्त्रता का खयाल अधिक था। इसलिए सोचा गया कि यदि ऐसा किया जाय, तो वह एक प्रकार की कड़ाई ही हो जायगी। इसलिए वैसा नहीं किया गया। यदि वैसा किया जाता, तो देश के साथ कोई अन्याय न होता। इस तरह जनता को भी मालूम पड़ जाता कि पुराना राज्य बदल गया और अब स्वराज्य आ गया है। फिर क्या मजाल कि कोई नौकर खादी के सिवा दूसरा कपड़ा पहनता! स्वराज्य-प्राप्ति के साधन के तौर पर खादी मानी जाती थी, इसलिए यह स्वराज्य का पोशाक हो सकता था। स्वराज्य में इसे सबको पहनना ही चाहिए। अगर ऐसा होता, तो हमारे देश का वातावरण ही बदल जाता और लोगों को अनुभव होता कि स्वराज्य आ गया है।

## क्रान्ति का मन अलग ही होता है

बापू ने कहा था कि स्वराज्य होने पर वाइसराय-भवन को अस्पताल बनाया जायगा। दिल्ली में बहुत से मकान पड़े थे, जहाँ नौकर रहते थे। मान लीजिये कि खूनी राज्यक्रान्ति करके राज्य पाया जाता, तो तोपों से इन मकानों को जमीन-दोस्त कर दिया जाता। तभी राज्यकर्ताओं को सन्तोष होता। कारण, इन मकानों से भारत पर अनेक अत्याचार हुए थे। किन्तु बापू ने बताया कि इन्हें जमीनदोस्त करने की कोई जरूरत नहीं, उसे अस्पताल में परिणत कर दें। उन्होंने यह अहिंसक युक्ति बतायी। अगर यह होता, तो लोगों को स्पष्ट मालूम पड़ जाता कि नया राज्य आ गया है। स्वराज्य के बाद शरणार्थियों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। उनकी शिकायत थी कि ये सरकारी नौकर बड़े-बड़े मकानों में रहते हैं और हमें रहने के लिए जगह नहीं मिलती। अगर वाइसराय-भवन जैसे मकानों में शरणार्थी ही रह जाते, तो वह एक आदर्शवादी, सिंबोलिकल बात हो जाती। मैं कहना यह चाहता था कि क्रान्ति का एक अलग ही मन हुआ करता है और उसमें भी अहिंसक क्रान्ति का मन हिंसक क्रान्ति के मन से कहीं अधिक कार्यकारी हुआ करता है।

## नव-कल्पना के बिना स्वाद फीका

पुरानी बात है। अहमदाबाद में कांग्रेस हुई, तो उससे पहले कांग्रेस में कुर्सी पर नहीं बैठा जाता था। यहाँ हम लोग जैसे बैठे हैं, वैसी बैठक थी। साथ ही हरएक को एक बगल-थैली दी जाती थी। कारण उसमें जूते सही-सलामत रहें। नीचे बैठना पड़ेगा, तो जूतों का क्या होगा, यही सोचकर यह योजना की गयी थी। इस तरह जूतों को थैली में डालकर बैठने की योजना कर कांग्रेस को भारतीय रूप दिया गया। उन दिनों हममें इतनी सारी कल्पना, प्रतिभा थी। लेकिन बाद में वह न होने से जब से स्वराज्य मिला, तब से वह फीका होने लगा। स्वराज्य का रस, स्वाद फीका पड़ने लगा। यह सब मैं इस समय इसीलिए याद कर रहा हूँ कि आज जो शिक्षा दी जा रही है, उसका दोष छात्रों पर मढ़ा जा रहा है। ऐसे रद्दी शिक्षण के रहते हुए भी छात्र बहुत अच्छे निकलते हैं, यह देख मुझे आश्चर्य होता है।

## छात्रों में सद्भाव की कमी नहीं

मेरा बहुत से छात्रों के साथ पत्र-व्यवहार चलता है। उनका ऐसा मुक्त पत्र-व्यवहार कदाचित् ही किसीके साथ चलता हो, जैसा कि मेरे साथ चलता है। इस पर से मालूम पड़ता है कि इनमें काफी ध्येयवाद है। उनमें यह आकांक्षा पायी जाती है कि कुछ नया कर दिखाना चाहिए, भारत का कुछ कर्तव्य है। ऐसे रद्दी शिक्षण के बावजूद जब हम यह बात देखते हैं, तो कहना पड़ता है कि हमारे देश पर भगवान् की कृपा ही है। भगवान् इस देश में अहिंसात्मक क्रान्ति का कुछ काम कराना चाहता है। इसके सिवा इसका दूसरा कोई उत्तर नहीं मिलता। इतना अधिक सद्भाव मैंने विद्यार्थियों में देखा है।

## क्या अंग्रेजी का स्तर गिरना शोचनीय?

यह सच है कि विद्यार्थियों का विद्याभ्यास में अधिक ध्यान नहीं रहता। यह भी कहा जाता है कि 'छात्रों का अंग्रेजी का स्तर बहुत नीचे आ गया है। हम लोगों के जमाने में जितनी अंग्रेजी आती थी, उतनी आज के छात्रों को नहीं आती।' इस पर मैं कहता हूँ कि अगर आप इन्हें पहले जैसी अंग्रेजी सिखलाना चाहते हों, तो 'क्विट इंडिया' (भारत छोड़ो) की जगह 'रिटर्न इंडिया' (भारत लौटो) ही कहना होगा। यह हो सकता है कि अमुक-अमुक लोग अच्छी-से-अच्छी अंग्रेजी सीख लें, लेकिन स्वतंत्र भारत में सारी जनता पर उसे लादना संभव नहीं। परतंत्र भारत में तो ज्यों ही स्कूल में प्रवेश होता, त्यों ही अंग्रेजी का उपयोग शुरू हो जाता। शिक्षक और छात्रों की मातृभाषा एक होने पर भी वह उनसे एक शब्द भी मातृभाषा में बोल नहीं सकता था। कक्षा में 'मे आई कमिंग सर?' कहकर ही प्रवेश करना पड़ता। कोई शंका भी मराठी या गुजराती में नहीं पूछी जा सकती थी। शंका पूछने के लिए भी मन में अंग्रेजी में वाक्य रच लेना पड़ता था। अगर वह शुद्ध न बन पड़ता, तो शंका भी मन-ही-मन रह जाती। इतना सारा अंग्रेजी का वातावरण रहते उसका अच्छा होना स्वाभाविक ही था। लेकिन क्या अब भी हम अंग्रेजी का ऐसा वातावरण रख सकते हैं? ऐसी स्थिति में जो अंग्रेजी का स्टैण्डर्ड ऊँचा रखने का आग्रह करते हैं, वे यह जानते ही नहीं कि आज दुनिया और भारत में क्या चल रहा है। पुराने जमाने का मानव नये युग के पराक्रम को नहीं समझ पाता, तो साधारण जनता कहाँ से समझ पायेगी? नये जमाने में जो अनुभूति होती है, विद्यार्थियों के मन में जो नये विचार आते हैं, उनकी दखल पुराने लोगों को नहीं है। पुराणों में एक कहानी आती है कि परशुराम विष्णु के एक अवतार थे और रामचन्द्रजी भी विष्णु के ही अवतार थे। किन्तु परशुराम राम को पहचान न सके। विष्णु का अवतार विष्णु को न पहचान सका। इस तरह स्पष्ट है कि पुराने लोगों को यह ध्यान में नहीं आता कि नये लोगों के मन कैसे बने होते हैं। पुरानी बातों की ही रट लगाने में कोई भी रस नहीं आता।

## अब आँखें खुलीं

यही कारण है कि आज ये सारे उपद्रव हो रहे हैं। इससे आज सभी नेता लोग हैरान हैं। युनिवर्सिटियों और कॉलेजों में परेशानियाँ हो रही हैं। तब उन्होंने घोषणा की कि शिक्षण-पद्धति बदलनी चाहिए। जब आठ-दस साल बीत गये, तब नेताओं को भान हुआ कि अब शिक्षा-पद्धति बदलनी चाहिए। सरदार पटेल कितने ही व्याख्यानों में कह गये हैं कि यह शिक्षा-पद्धति बदलनी चाहिए। राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू भी मौके-मौके पर कह ही देते हैं कि आज की शिक्षा-पद्धति बिलकुल बेकार है। इस तरह जब राष्ट्रपति और सरदार पटेल जैसे लोग इसे बेकार बताते हैं, तो आखिर इसे कौन चला रहा है? दस वर्षों बाद जब इससे तंग आ गये, तब कहा जाने लगा कि अब शिक्षा-पद्धति बदलनी चाहिए। भारत सरकार ने भी अब निर्णय कर लिया है कि सारे भारत में नयी तालीम चलायेंगे। ऐसा प्रस्ताव भी पास हो गया कि नयी तालीम राज्य की तालीम होनी चाहिए।

## नयी तालीम से पुराने मूल्य खतम होंगे

इसके बाद मैंने नयी तालीम पर व्याख्यान दिया। मैंने कहा था कि अगर आप यह मानते हों कि नयी तालीम से छात्रों में पूरा अनुशासन आ जायगा, तो कहना पड़ेगा कि आप लोग भारी भ्रम में पड़े हुए हैं। नयी तालीम से अत्यन्त क्रान्तिकारी विद्यार्थी तैयार होंगे और वे आज की समाज-रचना को जड़-मूल उखाड़ फेंकेंगे। वे आज का कोई भी मूल्य न मानेंगे। इसलिए सावधान हो जायँ। अगर आप अनुशासन रखना चाहते हों, तो कृपा कर नयी तालीम न चलायें। नयी तालीम का छात्र तुरत यह आपसे पूछे बिना न रहेगा कि हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री की अपेक्षा राष्ट्रपति का वेतन अधिक क्यों? कारण 'अमुक वेतन' जैसी बातें नयी तालीम में नहीं हैं। इसलिए अगर आप आज की व्यवस्था, उच्च-नीचता और ये आर्थिक मूल्य कायम रखकर नयी तालीम अपनायेंगे, तो आप जैसा चाहते हैं, वैसा नहीं होगा। नयी तालीम का बड़ा-से-बड़ा गुण यही है कि उससे बच्चे स्वतन्त्र बुद्धि-वाले होंगे और आज की दर्जेवाली रचना को टिकने नहीं देंगे। यह रचना नयी तालीम के विरुद्ध बगावत करेगी, यह सोचकर उस समाज को बदलने का पक्का निश्चय करते हों, तभी नयी तालीम स्वीकार करें। इन दिनों जो नयी भावना खड़ी हुई है, उसकी दखल पुराने लोगों को नहीं है। इसकी दखल होनी चाहिए कि नये भाव भारत में प्रकट हो रहे हैं। नये भाव और नयी भावनाएँ एकरूप होंगी, तो आज के विद्यार्थियों में से काफी शक्ति प्रकट होगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

## ग्रामदान से सभी सहमत

मैंने देखा है कि ग्रामदान की बातें सुननेवालों को काफी पसंद पड़ती हैं, अच्छी लगती हैं। फिर भी कितनों को लगता है कि यह कैसे हो सकेगा? वे समझते नहीं कि यह कोई हिसाब लगाने की बात नहीं है कि सात वर्ष में इतना काम हुआ, तो पूरा काम कितने दिनों में होगा। घर को आग लगाने के लिए बीस साल लग गये, तो आग लगने पर उसके जल जाने के लिए कितना समय लगेगा? चिनगारी लगने में पचीस साल लग गये, तो जलने में कितने साल लगेंगे—क्या यह भी अंक-गणित का कोई सवाल हो सकता है? भावना बनने पर क्रान्ति एक दिन में हो जाती है।

## क्रान्ति एक ही दिन में होती है

कई लोग मुझसे सवाल करते हैं कि 'आप जमीन का वितरण कब करेंगे और उसे पूरा होने में कितना समय लगेगा? आपने पाँच करोड़ एकड़ की माँग की है। आप चाहते हैं कि सभी गाँवों में ग्रामदान हों। ये ग्रामदान कब पूरे हो जायँगे?' मैं कहता हूँ कि यह काम एक ही दिन में होनेवाला है। यह दो दिन का काम नहीं। यह एक दिन लाने के लिए ही कुछ प्रयत्न करना पड़ेगा, तो पड़ सकता है। लेकिन क्रांति एक ही दिन में हो जायगी। हिन्दुस्तान में एक तारीख घोषित होगी और उस दिन सारे गाँवों की सारी जमीन सामुदायिक हो जायगी। जब सारे भारत में एक ही दिन दिवाली और एक ही दिन होली जलती है, तो यह क्रान्ति का काम भी एक ही दिन में क्यों न होगा? यह भावना का विषय है और मैं जानता हूँ कि विद्यार्थियों में ये भावनाएँ भरी हुई हैं। यह मैं नहीं जानता कि आपको भी इसका पता है या नहीं? हिन्दुस्तान की सभी भाषाओं की धार्मिक पुस्तकों के बाद अधिक-से-अधिक साहित्य भूदान और ग्रामदान का साहित्य ही खपता है, आप पता लगाकर देख लें। एक जमाने में साम्यवादी साहित्य ही खूब बिकता था। हिन्दुस्तान की बहुत-सी भाषाओं में इस साहित्य का अनुवाद हुआ करता था। लेकिन सात-आठ साल की पदयात्रा में मैं जिन-जिन प्रान्तों में घूमा, उन सबके अनुभव से कह रहा हूँ कि जितनी माँग सर्वोदय-साहित्य की है, उतनी और किसीकी नहीं। लोगों का मानस इस बात के लिए तैयार हो गया है, ऐसा मुझे लगता है। जब सारी घास सूख जाय, तो मामूली चिनगारी की ही जरूरत होती है। फिर तो एकदम वह जल जाती है। समाज का मानस इसके लिए तैयार है, यह देख मुझे बहुत आशा हो रही है। आप लोग तो भगवान् कृष्ण के वंशज माने जाते हैं। इसलिए काठिया-वाड़ के लोग इस क्रान्ति को उठा लेंगे और गाँव-गाँव घूमकर विचार का प्रचार करेंगे, तो सारे सौराष्ट्र में ग्रामदान हो सकता है। यहाँ जैसा देख रहा हूँ, उसी पर से यह कह रहा हूँ।

## नरेश सामाजिक सेवक बनें

आज कितने ही भाइयों के साथ बातचीत चलती रही कि राजाओं को सारी जनता की सेवा में लग जाना चाहिए। इस पर एक राजा ने यह कहते हुए कि 'यह बात हमें भी बहुत अच्छी लगती है', कितनी ही अपनी बातें बतायीं। उन्होंने भी इसे पसन्द किया और कहा कि 'आपकी बात सच है।' मैंने उनसे कहा कि 'राजाओं के राज्य विलीन हो जाने से उनके उत्तरदायित्व कम हो गये हैं। इसलिए अब उन्हें सेवा का कुछ काम उठाना चाहिए। अगर वे ऐसा करते हैं, तो नेता बन जायँगे। मैं ऐसे ही लोगों की खोज में हूँ, जो पक्षमुक्त हों। फिर राजा लोग क्योंकर पक्षमुक्त न होंगे? अगर वे किसी पक्षविशेष में जायँ और चुनाव में खड़े हों, तो उन्हें कुछ के वोट मिलेंगे और कुछ के नहीं भी। ऐसी स्थिति में वे चुने जायँ, तो क्या ऐसा चुना जाना राजाओं के लिए अच्छा कहा जा सकता है? इसकी अपेक्षा वे सारी प्रजा के सामाजिक सेवक क्यों न बनें?'

## भारत का मानस तैयार हो गया है

इस तरह मैं देखता हूँ कि जनता का मानस तैयार हो गया है। वे मेरी बात सुनकर इनकार नहीं करते। मुझसे मिलते

हैं, विचार सुनते और 'हाँ-हाँ' कहकर चले जाते हैं। कितने ही लोग मुझसे मिलते ही नहीं। उन्हें डर लगता है। अगर मुझसे मिलें, तो दिमाग ही बदल जाय। आखिर यह सब क्यों होता है? हवा में एक बात फैल गयी है। 'होगा, होगा' यह जो जप करता हूँ, उसीका यह परिणाम है। स्वराज्य के बारे में भी यही तो हुआ। 'भारत छोड़ो, भारत छोड़ो' बच्चों तक ने जपना शुरू किया और सचमुच अंग्रेज भारत छोड़ गये और हम आजाद हुए। ईसा ने कहा है कि 'बच्चों के मुँह से भगवान् के शब्द निकलते हैं।' आज भी बच्चे बोलने लगे हैं—'जय जगत्, जय ग्रामदान, भूमि का मालिक कोई नहीं हो सकता, सबै भूमि गोपाल की।' ये चिड़िया भी यही बोलती हैं और ये कौए भी यही काँव-काँव कर रहे हैं। ये इस सभा की ये बातें सुन जंगल-जंगल जाकर यही सुनाते होंगे। इस तरह बात हवा में फैल जाती है। जब अन्धड़ उठता है, तो पक्षी आकाश में उड़ने लगते हैं। जब प्रवाह तैयार हो जाता है, तो मानव के मन भी उसी प्रवाह में बह निकलता है और काम बन आता है। इस तरह भारत का मानस तैयार हो गया है, यह बात मैं हर सभा में देखता हूँ।

### सत्य का कोई मुकाबला नहीं कर सकता

यही कारण है कि मुझे इस बारे में कुछ भी चिन्ता नहीं है। मैं किसी बादशाह की तरह निश्चिन्त ही घूमता हूँ। एक अंग्रेजी कविता है, जिसका अर्थ यह है कि कौन ऐसा व्यक्ति है, जो मेरा मुकाबला कर सके। सत्य वस्तु के विरोध में कोई खड़ा नहीं रह सकता। जमीन पर सभीका समान अधिकार है। यह जमीन परमेश्वर की है। फिर हम इसके मालिक कैसे हो सकते हैं? सोचने की बात है कि जमीन के मालिक बनने का दम भरनेवाले आप-जैसे कितने ही चले गये। फिर भी जमीन ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। फिर आप उसके मालिक कैसे? ६० साल पहले टॉल्स्टॉय ने कहा था कि जमीन की मालकियत महापाप है, महान् अन्याय है। इसलिए यह पाप मिटना ही चाहिए।

### ग्रामदान से डरने की कोई बात नहीं

अगर पूछें कि यह कैसे होगा, तो कहना होगा कि पहले इस विचार को कबूल करो, फिर यह प्रश्न पूछो। नदी से पार होने के लिए पुल कैसे बनाया जाय, यह तभी पूछना ठीक होता है, जब उसे पार करने का निश्चय हो जाय। अतः यही निश्चय पहले करना चाहिए। फिर उसके लिए हम क्या करें, यह देखना ठीक होगा। जिस तरह राजाओं के राज्य छोड़ने के बाद उन्हें दरिद्र नहीं बनाया गया, उनके खाने-पीने की अन्य साधारण लोगों से अच्छी व्यवस्था की गयी, उसी तरह जमीन की मालकियत छोड़नेवालों को भी कुछ दिनों के लिए साधारण जनों से कुछ विशेष सुविधा दी जा सकती है। इसलिए ग्रामदान से डरने की कोई बात नहीं। ग्रामदान के बिना गाँव टिक न सकेंगे। यदि विश्वयुद्ध छिड़ जाय, तो पंचवर्षीय योजना कागजों में ही पड़ी रह जायगी। ग्राम-स्वराज्य से ही गाँव टिक पायेंगे। यह सब देखते हुए ग्रामदान का विचार न केवल एक क्रान्तिकारी विचार ही है, बल्कि देश को बचाने का भी विचार है। इस तरह यह एक 'डिफेन्स मेजर' है, देश की रक्षा का साधन है।

◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन

इंगोराला १२-११-'५८

# मानव-हृदयों में करुणा जाग्रत हो

बड़ी खुशी की बात है कि इस गाँव के भाइयों ने छठा हिस्सा जमीन दी है। सारे भारत के लिए मेरी यही माँग है। अगर सभी गाँववाले यह छठा हिस्सा दे दें, तो आज देश का बहुत बड़ा प्रश्न हल हो जाय। इससे ग्राम-स्वराज्य की योजना बनाने में भी काफी मदद मिलेगी। अगर काठियावाड़ का हर गाँव जमीन का छठा हिस्सा दे, तो भारी शक्ति पैदा होगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। फिर हम लोग ग्राम-स्वराज्य की बात भी कर सकते हैं। अगर करुणा का भाव पैदा हो जाय, तो उस करुणा का उपयोग कर सारा गाँव किस तरह एक परिवार बनाया जाय, इस पर सोचा जा सकता है।

### दान और करुणा

दान की अपेक्षा करुणा का महत्त्व अधिक है। दान तो देखादेखी से, शर्म से या स्वर्ग आदि की प्रेरणा से भी दिया जा सकता है। लेकिन करुणा की बात अलग है। भगवान् ने हरएक के हृदय में कुछ-न-कुछ प्रेम का भाव रखा ही है। हर घर में उसका अनुभव होता ही है। प्रेम न हो, तो घर में कुछ आनन्द ही नहीं रह जाता। घर के उसी प्रेम को जब गाँव में व्यापक कर दिया जाता है, तो वह 'करुणा' कहलाने लग जाती है। माँ-बाप अपने बच्चे पर प्रेम करते हैं, तो वह करुणा नहीं कही जा सकती। जब वही प्रेम व्यापक बनता और अड़ोस-पड़ोस के, समाज के लिए किया जाता है, तभी वह करुणा का रूप धारण करता है।

### दुःखियों के दुःख से दुःखी हों

किन्तु सवाल यही है कि आज सारी दुनिया का प्रवाह उल्टा ही जा रहा है। हर कोई अपने घर की संपत्ति बढ़ाने की ही सोचा करता है। स्वार्थमय संकुचित वृत्ति रखता है। उसकी जगह यह करुणा कैसे ले, यही सवाल है। इसीलिए गत सात वर्षों से मैं यही कह रहा हूँ कि मानव के हृदय में करुणा जगे। तभी उसे वैष्णव जन की व्याख्या लागू होगी। अपने गाँव के दुःखी लोगों को देख हमें इतना दुःख होना चाहिए, जितना कि उस दुखिया को भी नहीं होता। अगर इस तरह होता है, तो निश्चय ही गाँव की शक्ति बढ़ेगी।

### भूदान-ग्रामदान से ग्राम-स्वराज्य

ग्रामदान में किसी तरह डरने की बात नहीं है। आखिर उसका अर्थ यही है कि भगवान् ने जो कुछ दिया है, उसका गाँव के सभी लोग मिल-जुलकर उपभोग करें। जिस तरह हवा-पानी की व्यवस्था सभीके लिए आवश्यक होती है, उसी तरह जमीन भी सबको मिलनी चाहिए। बिना जमीन के किसीका भी नहीं चल सकता। फिर हवा और पानी की तरह यह जमीन

भी भगवान् ही की देन है, किसी एक की मालकियत की नहीं। इसलिए सारी जमीन गाँव की कर देनी चाहिए। यहाँ जमीन का वितरण किया गया है, तो ग्रामदान के बाद पुनः सभी मिलकर सबके समाधानपूर्वक जमीन का पुनर्वितरण करें। आज तो जिसके पास कुछ अधिक जमीन है, वह भूमिहीनों को उसमें से जो कुछ दे दे, तो उसकी कुछ हानि न होगी। वह उस जमीन से अधिक मूल्य का गाँववालों का प्रेम प्राप्त करेगा। उसे एकदम सबके समान बना देना कठिन होगा, अतः दस वर्ष तक तो उसे कुछ अधिक भी दिया जा सकता है। आखिर राजा-महाराजाओं को भी हम लोग कुछ अधिक देते ही हैं, किन्तु दस वर्षों में जब उनके बाल-बच्चे सक्षम हो जायँगे, तो फिर उन्हें अधिक देने की कोई जरूरत नहीं रहेगी। ग्रामदान होने के बाद गाँव की मालकियत ग्राम-सभा की होगी, जो गाँव के इक्कीस वर्ष के लोगों से बनेगी। सारी जमीन इस गाँव-सभा के नाम ही रहेगी, दूसरे किसी के नाम नहीं। फिर गाँव के उद्योग भी चलेंगे और इस तरह गाँव का स्वराज्य हो जायगा।

## ग्रामदान : भला करने का सामूहिक यत्न

ग्रामदान का अर्थ है, गाँव का भला करने का सभी का सम्मिलित प्रयत्न। जैसे कोई सरकार देश की चिन्ता करती है। वैसे ही वह ग्रामसभा ही सारे गाँव की चिन्ता करेगी। वह खुद खाने के बाद दूसरों को नहीं खिलायेगी। बल्कि जिस तरह माँ खुद को भूखा रखकर भी पहले बच्चों को खिलाती है, उसी तरह यह भी पहले दूसरों को खिलायेगी। माँ बच्चे के लिए इतना प्रेम और त्याग करती है। इसीलिए वह पूजनीय होती है। इसी तरह गाँव-सभा भी प्रेम और त्याग कर लोगों की दृष्टि में पूजनीय बन सकती है। इस तरह यह काम हर गाँव में होना चाहिए। फिर तो तालुके को लेकर काम करना चाहिए।

## स्वावलम्बी बनिये

इस तालुके में खादी का काम शुरू हुआ है, पर अभी लोगों के बदन पर खादी नहीं दीखती। जिस तरह गाँव में तैयार हुए अन्न पर हम लोगों का जीवन चलता है, उसी तरह कपड़ा भी गाँव में ही तयार होना चाहिए। गाँववाले निश्चय करें कि हम अपने काम का कपड़ा खुद ही तैयार कर लेंगे। अगर ऐसा करते हैं, तो वह बहुत बड़ा काम होगा। उससे एक शक्ति प्रकट होगी। अगर बिजली का उपयोग भी कारगर हो, तो उसे भी कर सकते हैं और अंबर चर्खे का उपयोग करना चाहें, तो वह भी कर सकते हैं। सारांश, जो कुछ किया जाय, स्वावलंबन के लिए ही हो, तो कोई हर्ज नहीं। वैसे गांधीजी ने गरीबों की कपड़े की तंगी देखकर लंबी धोती पहनना और फेंटा बाँधना तक छोड़ दिया और गमछे पर ही काम चलाने लगे। लेकिन सभी तो गांधीजी नहीं हो सकते। अतः हम अधिक-से-अधिक कपड़ा भी उपयोग में ला सकते हैं, लेकिन उसे खुद ही तैयार कर लेना चाहिए या वह खादी का ही पहनना चाहिए। इससे गरीबों को उद्योग मिलेगा और गाँव में उद्योग की कमी न रहेगी। इस तरह व्यक्तिगत मालकियत न रहकर गाँव के लोग अपना बनाया कपड़ा पहनेंगे, तो सभीको सन्तोष होगा। फिर गाँव में शिक्षा की योजना भी स्वयं गाँववालों को कर लेनी चाहिए। गाँव में एक सामूहिक दूकान भी रहे और उसीकी मारफत गाँव और बाहर के प्रदेश के साथ व्यापार-व्यवहार होता रहे। इस तरह देखा जाय, तो ग्रामदान में किसी तरह का भय नहीं। भिन्न-भिन्न गाँवों की भिन्न-भिन्न योजनाएँ बन सकती हैं। मूलभूत बात मान्य करने के बाद बाकी सारी बातें अपनी बुद्धि और गाँववालों की सम्मति से की जा सकती हैं। उसमें किसी तरह का हर्ज नहीं।

## सौराष्ट्र से पूरी आशा

कल मैं सणसरा में था। वहाँ बहुत अच्छी संस्था चलती है। ऐसी संस्थाएँ हमारे देश में बहुत कम हैं। वहाँ उत्तम विचारों और भक्तिभाव का शिक्षण मिलता है। इसीलिए मैंने वहाँ माँग की कि यहाँ से मुझे शान्ति-सैनिक मिलने चाहिए। यह संस्था शांति-सैनिकों को तालीम देने का काम अच्छी तरह कर सकती है। सौराष्ट्र के लिए शान्ति-सैनिकों की शिक्षा और व्यवस्था करना बड़ा आसान है। इन कार्यकर्ताओं, शान्ति-सैनिकों के निर्वाह का काम लोग उठा सकते हैं। वे संपत्तिदान और सर्वोदय-पात्र द्वारा यह काम कर सकते हैं। इसलिए घर-घर सर्वोदय-पात्र होना चाहिए। आज यहाँ पाँच सर्वोदय-पात्र और पाँच ही शांति-सैनिकों के नाम प्रस्तुत हुए हैं। मैं इसे पाँच पाण्डवों का आरंभ-मात्र मानता हूँ। मुझे आशा है कि सभी घरों में सर्वोदय-पात्र रखा जायगा।

## ग्राम-स्वराज्य की पंचसूत्री

इस तरह मैंने आपके सामने निम्नलिखित बातें कहीं : १. हर घर में सर्वोदय-पात्र रखा जाय। २. शान्ति सेना के लिए छह प्रतिज्ञा लेनेवाले लोग आगे आयें और शिक्षण के लिए सणोसरा-केन्द्र भार उठाये। ३. खादी की योजना की जाय। ४. भूमिदान किया जाय, जिससे भूमिहीनों को संतोष हो। तभी हम सबका विश्वास पा सकेंगे। ५. जमीन ग्राम-सभा को बने। सरकार में नाम गाँव का रहे, बाकी योजना गाँववाले करें। आप लोग समझदार हैं। भगवान् कृष्ण की, वैष्णवों की भूमि के हैं। मुझे विश्वास है कि जहाँ ये सारी चीजें उपस्थित हैं, वहाँ ग्राम-स्वराज्य का आदर्श अवश्य उपस्थित हो सकेगा। इसके लिए हम लोगों की मदद की जरूरत नहीं। वह तो खुद आप लोग ही कर सकते हैं।

◆◆◆

प्रत्येक धर्म में कोई न कोई विशेषता होती है। साधारणतः सामान्य सिद्धान्त समान होने पर भी यह विशेषता सहज ही ध्यान में आता है। ईसाई धर्म में मानवसेवा का भाव सर्व-प्रधान है। मनुष्य मात्र की सेवा ने ईसाई धर्म में इतना माहात्म्य प्राप्त कर लिया है कि जहाँ कहीं भी मनुष्यों को दुःख होता है, ईसाई लोग सेवा के लिए चले जाते हैं। इसमें किसी अंश में लोगों को ईसाई बनाने का भाव भी रहता हो, परन्तु सेवा की भावना तो रहती ही है।

◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन

राजपुरा ( पटियाला ) २८-४-'५९

# आज की तालीम से अपने बच्चों को बचायें

यहाँ अखिल भारतीय तालीम के माहिर इकट्ठा हुए थे, जिन्होंने देश की तालीम के बारे में काफी चर्चा की। अब इसमें कोई दो राय नहीं रही कि स्वराज्य के पहले जो तालीम चलायी गयी, वह स्वराज्य के बाद चल नहीं सकती। मैंने तो १५ अगस्त १९५७ के दिन ही कहा था कि 'जैसे नया राज्य आने पर पुराना झंडा एक क्षण के लिए भी नहीं रह सकता, वैसे ही नये राज्य में पुरानी तालीम भी चल नहीं सकती। फिर भी स्वराज्य के बाद देश के और नेताओं के सामने कई उलझनें आयीं, इसलिए कुछ साल ऐसे ही चले गये। उसके बाद धीरे-धीरे हम सोचने लगे और अब इतने वर्षों बाद लगभग एक राय हुई है कि पुरानी तालीम जैसी-की-तैसी नहीं चलनी चाहिए। अब सिर्फ यही सोचा जाता है कि पुरानी तालीम में भी कुछ लेने लायक चीज है या नहीं या वह बिलकुल ही निकम्मी चीज है? हम लोग गाय जबतक जिंदा रहती है, तबतक तो उसका उपयोग लेते ही हैं, लेकिन उसके मरने के बाद भी टेनरी में उसका उपयोग लेते हैं। इस तरह जब हम मरी हुई गाय का भी उपयोग लेते हैं, उसमें भी कुछ मुनाफा देखते हैं, तो वर्षों से चली आनेवाली तालीम में कुछ लेने लायक है ही नहीं, ऐसा हम नहीं कह सकते। जो लेने लायक हो, उसे लिया ही जायगा। लेकिन पुरानी तालीम की जो पद्धति थी, वह स्वराज्य के बाद नहीं चल सकती। इसलिए अब तालीम का स्वरूप बदलना ही चाहिए, इसमें सबकी एक राय हो गयी है।

## ज्ञान-कर्म का अभेद्य संबंध ही मुख्य विचार

अब सवाल इतना ही आता है कि उद्योग के साथ तालीम का जोड़ हो, तो कौन से उद्योग चलें? यह एक अलग बात है। मैं मानता हूँ कि जिस प्रकार के उद्योग देशवासी चलाना चाहते हों, उनकी तैयारी के लिए बच्चों को प्रवेश के तौर पर कुछ उद्योग सिखलाये जायँ। समाज भी इसी प्रकार सोचता है। नयी तालीम में ज्ञान और कर्म का भेद ही नहीं हो सकता। नयी तालीम का विचार भगवद्गीता में जिस बेहतर तरीके से बताया गया है, वैसा और कहीं नहीं बताया गया है। गीता में कहा है कि ज्ञान में स्थिर चित्तवृत्तिवाला पुरुष जो कर्म करता है, वह यज्ञ के लिए ही करता है। उसका कर्म ज्ञान में समाप्त होता है। उसके कर्म का स्वरूप ही यह है कि लोकहित के लिए जो करना पड़े, उसे वह करता है। निष्काम कर्म से ज्ञान सुलगता है, जैसे कि इंधन से अग्नि। ज्ञान और कर्म का यह अभेद्य संबंध ही नयी तालीम का मुख्य विचार है। कर्म कौन से किये जायँ, यह तो देश, काल, परिस्थिति के अनुसार तय किया होगा। जो काम हिन्दुस्तान के लोग चुनेंगे, वे सिखलाये जायँगे। लेकिन जो काम चुनने हैं, वे ज्ञान-वाहन के लिए ही चुनने हैं। ज्ञान का वाहन कर्म हो सकता है।

जब जबान के बारे में सोचा जाता है, तो अक्सर प्रश्न उठता है कि शिक्षा का माध्यम क्या हो? शिक्षा का माध्यम मादरी जबान हो, यह ठीक ही है। लेकिन 'ज्ञान का माध्यम' क्या हो, इस पर सोचना चाहिए। मैं मानता हूँ कि ज्ञान का जरिया कर्म हो सकता है। बच्चे को माँ ज्ञान देती है, तो कर्म के जरिये ही देती है। माँ कुछ-न-कुछ क्रियाएँ चलाती है और उनका रूपान्तर शब्दों में करके बतातीं है। इस तरह ज्ञान की कुल प्रक्रिया कर्ममय होती है। ज्ञान के आदि में कर्म होता है, मध्य में कर्म होता है और अन्त में उसका परिणाम ज्ञान में होता है। नयी तालीम की यह प्रक्रिया अब सर्वमान्य-सी हो गयी है।

## लोकसंकल्प अत्यावश्यक

अखिल भारत में नयी तालीम का विचार किस प्रकार से फैले, इस पर सोचते हुए यही उत्तर मिलता है कि उसके लिए लोक-संकल्प चाहिए। केवल सरकारी संकल्प से काम नहीं होगा। लोक-संकल्प से ही उसका आरम्भ होना चाहिए। इसके मानी यह नहीं कि सरकार तालीम का कोई ढाँचा ही न बनाये। उसे तालीम देनी है, तो ढाँचा बनाना ही होगा। लेकिन यह बात लोक-मानस में पैदा होनी चाहिए। हमें ऐसे गाँव तैयार करने चाहिए, जो ग्रामस्वराज्य की दिशा में पहुँच जायँ। जैसा कि लोकमान्य तिलक ने कहा था, स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध हक है, वैसे ही मैं कहना चाहता हूँ कि हर ग्रामीण और हर नागरिक को संकल्प करना चाहिए कि ग्राम-स्वराज्य और नगर-स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध हक है। आज स्वराज्य हासिल हुआ है, किन्तु वह विकेन्द्रित हो जाना चाहिए। देश का बच्चा-बच्चा महसूस करे कि यह मेरा राज्य है। सभी देशवासियों को उसकी हरारत महसूस होनी चाहिए। केवल देहली और चंडीगढ़ में सूर्योदय हो, तो गाँव-गाँव में उसका ढिंढोरा पीटने पर भी लोग नहीं मानेंगे कि सूर्योदय हुआ है। जब उनके घरों में सूर्य की किरणें प्रवेश करेंगी, तभी वे कबूल करेंगे कि सूर्योदय हुआ है। इसी तरह हर एक को यह मालूम होना चाहिए कि अब हमारी जबान बिलकुल स्वतन्त्र हुई है, इसलिए उस पर 'स्वतन्त्र' याने हमारा तन्त्र चले, हमारा उस पर अंकुश रहे। हम सोचने में मुक्त हैं, इसीलिए हम अपनी जबान पर अंकुश रखें। इस प्रकार जब बच्चा-बच्चा विचार में आजादी महसूस करेगा, तभी सबको स्वराज्य का अनुभव आयेगा।

## यह कैसा स्वराज्य?

जब हर ग्रामीण और नागरिक के मन में यह भावना पैदा होगी कि हमारा राज आया, तब वे सोचने लगेंगे कि हमें किस प्रकार की तालीम चाहिए? पुराने जमाने में भेड़ों को गड़रिया चुनने का हक हासिल नहीं था। दो गड़रिये आपस में लड़ते थे। उनमें से जो कमजोर होता था, वह खतम हो जाता था और दूसरा गड़रिया बनता था। किन्तु भेड़ों पर दोनों का ही सुलतान के जैसा अंकुश चलता था। भेड़ों से कोई पूछता ही नहीं था कि तुम्हें कौन-सा गड़रिया चाहिए? लेकिन अब भेड़ों से पूछा जाता है। उनसे कहा जाता है कि तुम्हें अपना गड़रिया चुनने का हक हासिल हुआ है। पाँच साल के लिए तुम अपना गड़रिया चुनो। लेकिन भेड़ तो भेड़ ही रहे हैं। क्या यह भी कोई स्वराज्य है? जो पाँच साल तक गड़रिये बनेंगे, वे ही सब कुछ करेंगे? लोग अपना सारा चिन्तन-यन्त्र उन्हींको समर्पण कर देते हैं। सारी सत्ता अपने चुने हुए नुमाइन्दों के हाथ में सौंप देते हैं और कहते हैं कि हमारी हर बात आप तय करें। 'कल्याणकारी राज्य' के नाम पर हम लोग इसे पसन्द भी करते हैं। अब सिर्फ इतना ही रहा है कि लोगों ने अपना खाना-पीना नुमाइन्दों पर नहीं

सौंपा, अपने ही हाथ में रखा है। बाकी सारा समाज-सेवा का कार्य उन्हीं पर सौंपा है। इस तरह हर बात की कर्तुम्-अकर्तुम् अन्यथाकर्तुम् शक्ति सरकार के हाथ में दी गयी है। फिर सरकार कुछ काम करती है, लोगों में भय भी पैदा करके काम चलाती है। यह सारा मैं तो बहुत खतरनाक मानता हूँ।

## 'प्राज्य'-शास्त्र पर लिखा जाय

यहाँ पर गाड़गिल साहब (पंजाब के राज्यपाल) बैठे हैं, जो हमारे पुराने दोस्त हैं। वे राज्य-शास्त्र पर कुछ लिख रहे हैं। राज्य-शास्त्र के बारे में हर कोई अपने-अपने चिन्तन से लिखता है, लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि अब प्राज्य-शास्त्र पर लिखा जाय। 'प्राज्य' का अर्थ परिपूर्ण लोकनीति। परिपूर्ण लोकनीति कैसे चले, लोगों का राज कैसे चले, यह एक समस्या है। आज हालत ऐसी है कि दुनिया की सारी सत्ता चन्द लोगों के हाथ में सौंपी गयी है। अक्सर भक्त का रिवाज होता है कि वह भगवान् से अपने लिए सद्बुद्धि माँगता है। वह तो मैं करता ही हूँ, फिर भी मुझे भगवान् से ऐसी भी प्रार्थना करनी पड़ती है कि 'भगवन्! तू मुझे सद्बुद्धि न दे, तो भी दुनिया का कुछ नहीं बिगड़ेगा। चाहे मेरा बिगड़े और शायद तेरा भी बिगड़े, क्योंकि मैं तेरा भक्त हूँ, लेकिन दुनिया का नहीं बिगड़ेगा। किन्तु आईक, क्रुश्चेव आदि की बुद्धि बिगड़ी, तो दुनिया को आग लग जायगी, इसलिए उन्हें सन्मति दे।' सूरदास ने कहा है, 'मूरख-मूरख राजा कीन्हे, पंडित फिरत भिखारी।' लोगों ने बिल्कुल चुन-चुन कर मूर्खों को राजा बनाया है। सूरदास कोई आज के राज्यशास्त्र पर टीका नहीं लिख रहा था। लेकिन वह जानता था कि राज्य चलानेवाले औसत बुद्धि के होते हैं। सबका भला-बुरा करने की सारी शक्ति ऐसे औसत बुद्धिवालों के हाथ में सौंपी जाय, तो उसमें बहुत बड़ा खतरा है। इसलिए समाज को यह सोचना चाहिए कि सारी सत्ता किसीके हाथ में, चुने हुए नुमाइन्दों के हाथ में भी न सौंपी जाय। बहुत सारी सत्ता जनता अपने हाथ में रखें। सरकार जैसी एजेन्सी के मार्फत थोड़े ही काम किये जायँ। इसीमें जनता का भला है।

## सत्ता का विकेन्द्रीकरण जरूरी

व्यापारी एक मुनीम तैनात कर दे और उसीके हाथ में सारा काम सौंप दे—कुंजी भी दे दे, तो फिर व्यापारी स्वयं नफा-नुकसान के बारे में कुछ भी नहीं जानेगा। आखिर मुनीम ही सचमुच में मालिक बनता है और स्वयं व्यापारी गुलाम। इन दिनों कहा तो यह जाता है कि 'जो लोग सरकार में हैं, वे हमारे नौकर हैं, हमने उन्हें चुना है।' लेकिन हमारी हालत ऐसी है कि हम सिर्फ अपने ही नौकरों से नहीं डरते, बल्कि नौकर के, नौकर के, नौकर के, नौकर से डरते हैं। मामूली पुलिसवाला देहात में जाता है और सत्ता चलाता है। वह तो नौकर के नौकर का नौकर है; क्योंकि राज्य का मुख्यमंत्री हमारा नौकर है, उसके नीचे दूसरे अधिकारी हैं, इस तरह पुलिसवाला सबसे आखिर का नौकर है। जब जनता जाग जायगी, तभी यह हालत मिटेगी। इन दिनों नाम भी अच्छे-अच्छे दिये जाते हैं। आज के राज्य का नाम है, 'लोकशाही।' लेकिन जब तक जनता बहुत सारे काम अपने हाथ में नहीं रखती, तब तक सच्ची लोकशाही नहीं आ सकती। इसलिए विकेन्द्रित सत्ता होनी चाहिए। मुख्य काम जनता को अपने हाथ में रखने चाहिए और गौण काम चुने हुए नुमाइन्दों पर सौंपने चाहिए।

## यह लोकतंत्र कहाँ ले जायगा?

आज लोकतन्त्र की जो हालत है, उसे देखते हुए पता नहीं चलता कि यह लोकतन्त्र हमें कहाँ ले जायगा? मैं केवल हिन्दुस्तान की ही बात नहीं कर रहा हूँ, कुल दुनिया की यही हालत है। परिणामस्वरूप जो लोग मानते थे कि लोकतंत्र अच्छी चीज है, उनका भी भ्रम-निरास हो रहा है। जिस फ्रांस के साहित्य ने दुनिया पर असर डाला—जिसके लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता आदि के तत्त्वज्ञान का सारी दुनिया पर असर हुआ, उस फ्रांस की आज क्या हालत है? इसका कारण यही है कि आज मूल में ही दोष पड़ा है। वह दोष यही है कि हमने चंद लोगों के हाथ में सारी सत्ता सौंप रखी है। भले ही चंद लोग कितने भी बुद्धिमान् क्यों न हों, उनसे यह काम होनेवाला नहीं है। यह काबलियत तो स्वयं भगवान् भी नहीं रखता कि सारी सत्ता अपने हाथ में रखकर सारे काम चलाये। अगर भगवान् ने हमें बिलकुल कठपुतली बनाया होता और हर मौके पर उससे अक्ल माँगनी पड़ती, तो उसकी क्या हालत होती? बेचारे भगवान् को कितनी दौड़-धूप करनी पड़ती? आज के हमारे मंत्रियों को इतनी दौड़-धूप करनी पड़ती है, तो भगवान् तो बिल्कुल पसीना-पसीना हो जाता। लेकिन उसने ठीक सोचकर सबको अक्ल दे दी है। अक्ल का सारा खजाना अपने पास ही नहीं रखा है, सबमें विभाजित कर दिया है। हाँ, कुछ विशेषता अपने पास जरूर रखी होगी, सहयोग की अक्ल अपने पास रखी होगी। लेकिन उसने हम सबको थोड़ी-थोड़ी अक्ल बाँट दी है, इसलिए आज वह बिल्कुल शान्ति से रह सकता है। लड़ाई का मौका आता है, तो इंग्लैण्ड जैसे देश के लोग भी कुल-की-कुल सत्ता चर्चिल के हाथ में सौंप देते हैं। फिर किसीकी मजाल नहीं कि उसके खिलाफ कुछ कहें। यह सही है कि इंग्लैण्ड के लोगों में इतनी अक्ल जरूर है कि जहाँ लड़ाई खत्म हुई, वहाँ उन्होंने चर्चिल से हटने के लिए कहा। लेकिन वह बूढ़ा इतना जवान है कि आज भी कहता है कि मैं चुनाव के अखाड़े में उतरूँगा।

## संकट में भी लोकतंत्र कैसे काम देगा?

मैं कहना यह चाहता हूँ कि जब देश पर संकट आता है, तो लोकतंत्र कमजोर साबित होता है। लोकतंत्र अच्छी चीज है, लेकिन संकट के हालत में उतनी मजबूत नहीं। होना तो ऐसा ही चाहिए था कि संकट के मौके पर लोकतंत्र और मजबूत साबित होता। लेकिन उस समय सत्ता सेना के हाथ सौंपी जाती है। इसका मतलब यही हुआ कि मामूली मौके पर दूसरे देवता काम के हैं, जिनसे लड़के-बच्चे माँगे जा सकते हैं, लेकिन संकट के मौके पर तो चंडी, काली, कराली का ही आवाहन करना पड़ता है—चंडीजी ही बलवान है। लेकिन हम ऐसी व्यवस्था चाहते हैं कि संकट में भी लोकतंत्र काम दे। जो संकट में काम नहीं देती, वह भी कोई व्यवस्था है? इन दिनों देश में चर्चा चलती है कि मिली-जुली सरकार बनायी जाय। कुछ कहते हैं कि 'वह तो संकटकाल में करने की चीज है, आज उसकी क्या जरूरत है?' लेकिन मैं पूछता हूँ कि क्या आज कोई संकट मौजूद नहीं है? इसके माने यही है कि आज हम जो करते हैं, उसे संकट के मौके पर नहीं करना है। तब तो कुछ दूसरी बात करनी होती है। इससे लोकतंत्र कमजोर साबित होता है।

## सारा काम ठंढे दिमाग से करना होगा

आप सबको ध्यान में रखना चाहिए कि आज हमारे देश के

चारों ओर क्या हो रहा है ? तिब्बत, पाकिस्तान, बर्मा में क्या हो रहा है ? इसमें घबराने की जरूरत नहीं है। घबड़ाने से कोई मसला हल नहीं होता। विज्ञान के जमाने में जो घबड़ायेगा, वह पहले ही खतम हो जायगा। विज्ञान के जमाने में हमला करना हो, तो हिसाब से करना पड़ता है और भागना हो, तो भी हिसाब से ही भागना पड़ता है। इस जमाने में हम गुस्से से हमला नहीं कर सकते और न डर से भाग ही सकते हैं। जब हुक्म होता है, तो सेना आगे बढ़ती है और हुक्म के मुताबिक पीछे हटती है। पुराने जमाने में जो शौर्यादि गुण थे, वे अब नहीं रहे। अब तो ठंढे दिमाग से सारा काम करना पड़ता है। इसलिए मैं आपको घबड़ाना नहीं चाहता। लेकिन बताना चाहता हूँ कि सरकार के हाथ में सारी सत्ता सौंपी जाय और जनता अपने को अनाथ महसूस करे, यह एक स्वयमेव संकट है—परम-संकट है। इससे बड़ा संकट नहीं आयेगा। पाँच साल के लिए ही क्यों न हो, लेकिन सरकार के हाथों में इतनी सत्ता सौंपी जाती है कि उसके बाद आनेवाली दूसरी सरकार कोई खास फर्क नहीं कर सकती। पुरानी सरकार के किये काम ही नयी सरकार को आगे चलाने पड़ते हैं। इस जमाने के पाँच साल पुराने जमाने के पचास साल होते हैं, इसलिए अब हमें जागना होगा।

## नयी तालीम 'तरीकत' और 'हकीकत'

नयी तालीम को इन सब पर सोचना होगा। लोग समझते हैं कि नयी तालीम याने तालीम का एक तरीका है। हमने बहुत दफा कहा है कि नयी तालीम सिर्फ तरीका नहीं है, वह 'तरीकत' है और 'हकीकत' भी। मैं सूफियों की परिभाषा इस्तेमाल कर रहा हूँ। 'हकीकत' याने सत्य होता है और उसके पास पहुँचने का एक तरीका होता है। आज यह जरूरी है कि नयी तालीम सर्वत्र चलनी चाहिए। उसकी तफसील के बारे में मतभेद हो सकते हैं और होने ही चाहिए। बल्कि एक ही प्रकार की तालीम सब स्कूलों में नहीं चलती चाहिए। वही नयी तालीम होगी। यदि नयी तालीम का एक ही ढांचा बनाया गया, तो वह नयी तालीम नहीं रहेगी, पुरानी तालीम हो जायगी। नयी तालीम में ताजगी रहनी ही चाहिए। इसलिए नयी तालीम के आचार्यों को और प्रेमियों को अब निश्चय करना चाहिए कि हम इस देश में ग्राम-स्वराज्य की हवा पैदा करेंगे और लोगों को विचार समझायेंगे।

## नयी तालीम ही शान्तिसेना की जिम्मेदार

आज मैंने कहा था कि शान्ति-सेना की जिम्मेदारी कौन उठायेगा ? उसका उत्तर यही है कि नयी तालीम उठायेगी। दूसरे तरीके से शान्ति की स्थापना हो ही नहीं सकती। भोपाल, सीतामढ़ी आदि स्थानों पर अभी-अभी दंगे हुए। वहाँ पुलिस भेजी गयी। उसने गोली चलायी और कुछ शान्ति हुई। दस-बारह लोग पहले मारे गये थे, तो दस-बारह कानून के नाम और मारे जायँगे। वे बे-कानून मारे गये, तो वे बा-कानून मारे जायँगे। लेकिन क्या इससे शान्ति हो सकती है ? इसलिए नयी तालीम को शान्ति-सेना का काम उठाना होगा। गांधीजी ने नयी तालीमवालों को आगाह किया था कि तुम्हारा काम स्कूल तक महजूद नहीं, सारे समाज का है। जन्म से लेकर मृत्युतक तुम्हें सोचना है।

## शिक्षित ग्रामीण गाँवों में ही रहें

अभी हमने पढ़ा कि पंजाब में एक फीसदी लोगों ने मैट्रिक की परीक्षा पास की। यह तो हर साल चलेगा। अभी पं० नेहरू ने शिक्षित ग्रामीणों से कहा था कि 'उन्हें गाँवों में ही रहना चाहिए, शहर पर हमला नहीं करना चाहिए।' इस तरह उपदेश देना तो ठीक है, किन्तु हालत यही है कि लोग तालीम इसीलिए चाहते हैं कि गाँव से छुटकारा मिले। जगह-जगह लोगों की ओर से तालीम की माँग की जाती है और किसान स्कूल के लिए मकान आदि बना देते हैं। उसके लिए हजारों रुपये भी इकट्ठा करते हैं। लेकिन वह सब इसलिए होता है कि किसान सोचता है कि मुझे जो मेहनत करनी पड़ती है, वह कम-से-कम मेरे लाड़ले लाल को न करनी पड़े। वह तालीम पाकर शहर में जा सके।

## यह ज्ञान की तृष्णा नहीं

कुछ लोगों को लगता है कि लोगों में तालीम के लिए जो उत्साह दिखायी देता है, वह उनकी ज्ञान-तृष्णा के कारण है। अगर यह वास्तव में ज्ञानतृष्णा होती, तो हम नाचने लगते। किन्तु यह ज्ञानप्राप्ति की तृष्णा नहीं, काम टालने की तृष्णा है। इसलिए अगर हम ऐसी तालीम पाये हुए देहात के बच्चों से कहें कि 'तुम देहात में ही रहो', तो वे क्यों मानेंगे ? वे कहेंगे कि आपकी गन्धर्वनगरी में हम क्यों न आयें ? इन दिनों शहरवालों ने देहातियों के हमले को रोकने के लिए काफी प्रतिबन्धक तरीके अपनाये हैं। शहरों में मकान का किराया बहुत ज्यादा होता है, फिर भी लोग शहर में आते ही हैं। क्योंकि जो तालीम दी गयी है, उसमें ऐसी कोई चीज नहीं, जिससे काम के लिए प्रेम और ज्ञान प्राप्त हो। विद्यार्थियों को ऐसा ज्ञान नहीं दिया जाता, जिससे उनका काम रसमय बने, उत्पादन बढ़े। इसलिए आज जो तालीम चल रही है, उसमें मैं बहुत खतरा देखता हूँ। इससे देश बरबाद होगा।

## जनता और सरकार से अपील

कुछ लोग कहते हैं कि इस तालीम की निन्दा मत करो। इसी तालीम ने महात्मा गांधी, तिलक जैसे अच्छे लोग निकले हैं। मैं कहता हूँ कि तालीम से नहीं, तालीम के बावजूद निकले हैं। एक शख्स गले में दस पौंड का पत्थर बांधकर भी नदी तैरा, तो वह पत्थर से तैरा नहीं, पत्थर के बावजूद तैरा। गांधीजी कहते थे, बावजूद इस तालीम के मेरी अक्ल अच्छी रही। हम पुरानी तालीम से भी अच्छी चीजें लेंगे। लेकिन मेरी आप सबसे, जनता से और सरकार से यही प्रार्थना है कि आप अपने बच्चों को इस तालीम से बचायें।

◆◆◆

अनुक्रम

१. शिक्षा का दोष छात्रों पर मढ़ना...
जसदण, १७ नवं. '५८ पृष्ठ ३६५
२. मानव-हृदयों में करुणा...
इंगोराला, १२ नवं. '५८ , ३६८
३. आज की तालीम से अपने बच्चों को...
राजपुरा, २८ अप्रैल '५९ , ३७०

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी ( उ० प्र० ) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी।